



## ‘कामायनी’ काव्य में चेतना के विकास का अध्ययन

डॉ. अमिय कुमार साहू

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) एवं प्रमुख, भाषा संकाय, राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे, महाराष्ट्र, भारत।

### सारांश

यह शोध-लेख, जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित ‘कामायनी’ में वर्णित चेतना के विकास पर आधारित है। मनुष्य जन्म से पशु प्रवृत्ति को लेकर आता है। बचपन से लेकर आगे तक की यात्रा में वह अपने चेतनत्व को प्राप्त करता है जो उसे पशुत्व से अलग करता है। पर सभी मनुष्य में चेतनत्व होने के बावजूद, विभिन्न कारणों से वह उसे ऊर्ध्वता की ओर बढ़ा नहीं पाता और पशुत्व से आगे न बढ़ते हुए जीवन भर दुःख झेलता रहता है। मनुष्य का लक्ष्य, जो आनंद है, को पाने के लिए अपने चेतनत्व को उस ऊंचाइयों पर ले जाना होता है जहाँ में भाव का अंत होता है और संसृति की सेवा ही मनुष्य के चित का मूल उद्देश्य रह जाता है। तब जाकर वह परमानंद का भागी बनाता है। प्रसाद जी ने अपने इस काव्य में मनु के माध्यम से चेतना के विकास के विभिन्न सोपानों को उजागर किया है, जिसमें दर्शनिकता की पुट भी आ गई है। प्रसाद के काव्यत्व और प्रत्यभिज्ञा दर्शन की गहराइयों में जाकर चेतना-यात्रा के विभिन्न परतों को खोलना इस शोधलेख का उद्देश्य है।

**मूल शब्द :** कामायनी, चेतना, विकास, प्रत्यभिज्ञा, दर्शन, महाचिति।

### प्रस्तावना

जिजीविषा संसार का मूल है और संसार के सारे प्राणियों में निहित है। मानव एक जैविक प्राणी होने के कारण उसमें भी यह जिजीविषा भरी हुई है जो मूल रूप से जीने की इच्छा या प्राण रक्षा रहती है। मानव जगत और अन्य चेतन जगत दोनों में जीने की इच्छा रहती है और मानव की जिजीविषा, अन्य प्राणियों की जिजीविषा से कहीं अधिक विस्तृत है। जहां मानवतेर प्राणी सिर्फ अपने पेट के लिए जीता है, वहां मानव सिर्फ अपने पेट के लिए नहीं जीता; वह दूसरों के लिए भी जीता है। यहीं से संबंधों की शुरुआत होती है, यहीं से काम की प्रवृत्ति जन्म लेती है और मूल चेतना का विकास आरंभ होता है। वेद में कहा गया है-

न असत आसीत, न सत आसीत तदानीम।

कामस तदाग्रे समवर्ततापी मनसो रेत प्रथमयद आसीत।<sup>1</sup>

अर्थात् उस समय न सत था, न असत था। तब पहली बार काम का उद्भव हुआ, जिसमें मन का आदि बीज छिपा हुआ था। यह काम जहां एक तरफ संसार का सृजन करता है वहां दूसरी ओर वह विनाश का कारण भी बनाता है। यह सृजनकर्ता तभी बन सकता है जब यह पूर्ण काम हो, यदि यह विकृत हो गया तो विनाश का कारण बनता है। इसी विकृत काम को हम, ‘कामायनी’ काव्य के नायक मनु की चेतना के प्रथम प्रहर में पाते हैं जो उसके पतन का कारण बनता है। वह खुद काम का शिकार इसलिए होता है कि उसे स्वयं की शिवरूपता का ज्ञान नहीं है। वह माया के पांच कंचुक-कला, विद्या, राग, काव्य तथा नियति से घिर चुका है। इसके कारण मनु की चेतना संकुचित हो जाती है और उसे अपूर्णता का, अनित्यत्व का बोध होने लगता है। वह खुद की शक्ति को पहचान नहीं पाता; स्वयं का दीपक खुद नहीं बन पाता। वह व्यक्ति केंद्रित हो जाता है, अपने सुख को महत्व देकर हमेशा निराशा ही पाता है। सुख अस्थायी है, उसके बाद दुख का आना

स्वाभाविक है। मनु के साथ भी यही हुआ। उनके पास बल-वैभव, सुख-समृद्धि सब कुछ था; वह हमेशा वासना की सरिता में डुबकी लगाया करता था। यही सुख ही प्रलय का कारण बना।

भरी वासना सरिता का वह कैसा था मदमस्त प्रवाह  
प्रलय जलधौ में संगम जिसका देख हृदय था उठा कराह।<sup>2</sup>

प्रलय के बाद मनु निराशा से भर उठता है। उसे जीवन खलता है और निरर्थक लगने लगता है। चारों ओर अंधेरा और विध्वंस दिखाई देता है। वह जीवन को एक मरू मरीचिका समझता है।

जीवन की मरू-मरीचिका, कायरता के अलस विसाद।<sup>3</sup>

हमेशा आत्मसुख के शिखरों पर विचरण करने वाला व्यक्ति जब दुख की खाई में गिरता है तब उसके पास एक ही रास्ता बचता है, वह है आत्म-हनन का। यह संसार उसे धन-दौलत, सुख-समृद्धि के बिना हेय लगने लगता है। घुटन, कुंठा से ग्रस्त होकर वह निराशा से भर उठता है और निराशा से जूझने हुए मनु अपनी चेतना का विलोप चाहता है -

विस्मृति आ अवसाद घेर ले, निरवते बस चुप कर दे  
चेतनता चल जा जड़ता से, आज शून्य मेरा भर दे।<sup>4</sup>

मुक्तिबोध लिखते हैं “मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनु की इतनी घनघोर निराशा का मूल कारण उसकी विद्यमान स्थिति में केवल अपनी निसंग और असहायता न होकर उस प्राचीन सुख का लोप है जो देव सभ्यता के नष्ट होने के साथ नष्ट हुआ है”।<sup>5</sup>

### जिजीविषा और चेतना

मनु की चेतना के प्रथम प्रहर में हम जीवन के प्रति कोई ललक नहीं देखते। जो शक्ति रुपी प्रकृति पहले विनाश का कारण बनी थी वही फिर सुंदर रूप में

उदित होकर मनु के जीवन में आशा का संचार कराती है।

वह विवर्ण-मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हंसने फिर से  
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में, शरद विकास नए सिरे से।<sup>6</sup>

प्रसाद यहां संसार के प्रति आस्था का संदेश देते हैं। इस संसार में रहकर आत्म प्रत्यभिज्ञान के द्वारा आनंद प्राप्त किया जा सकता है। प्रकृति मनु की चेतना में जीवन की ललक भर देती है। वह जिजीविषा से भर उठता है। उस जीवन-लालसा के साथ वह पुकार उठता है-

जीवन! जीवन की पुकार है खेल रहा है शीतल दाह  
किसके चरणों में नत होता, नव प्रभात का शुभ उत्साह।  
मैं हूँ यह वरदान सदृश क्यों लगा गूंजने कानों में,  
मैं भी कहने लगा मैं हूँ शाश्वत नभ के गानों में।<sup>7</sup>

अब मनु की चेतना में जिजीविषा गहरी रूप में धंस जाती है, पर थोड़ी ही देर में मनु निराश हो उठते हैं। क्योंकि अकेला कैसे जिया जा सकता है। जिजीविषा एक जैविक मूल्य है जो काम के महत्व को स्वीकार करती है। इसके लिए कोई साथी की जरूरत होती है। यहीं से संबंध का आरंभ होता है; लगाव, प्रेम की शुरुआत होती है। पहले तो यह संबंध कच्चा रहता है, पर बाद में धीरे-धीरे विस्तृत होकर अपने उच्चतम रूप को प्राप्त करता है। जीने की इच्छा संसार का मूलभूत सत्य है। मनु का कोई साथी नहीं है जिसके सहारे वह अपनी जिजीविषा को विकसित कर सके। उसके मन में अनादी वासना जाग उठती है।

नव हो जागी अनादि वासना, मधुर प्राकृतिक भूख समान।<sup>8</sup>

इस अनादि वासना को किसी दूसरे के साथ मनु बांटना चाहते हैं। पर वहां वे अपने को अकेला पाते हैं। उसका हृदय चीख उठता है।

कब तक और अकेले कह दो मेरे जीवन बोलो।<sup>9</sup>

अकेलेपन में छटपटाते हुए, वेदना में तड़पते हुए, उसे अपने शब्दों का कुछ कुछ आभास होने लगता है। पर वह स्पष्ट रूप से उसकी चेतना में प्रकट नहीं होता। यह उसका पाशबद्धता का परिणाम है।

मैं भी भूल गया हूँ, कुछ हां स्मरण नहीं होता क्या था।<sup>10</sup>

फिर उसमें जीवन की लालसा घटती जाती है। वह द्रंद ग्रस्त हो जाता है। द्रंद ही चेतना के विकास की पहली सीढ़ी है। उसे अपने किए का पश्चाताप है। इसलिए वह खुद को पाखंड कहता है-

शैल निर्झर न बना हतभाग्य गल नहीं सका ज्यों के हिमखंड  
दौड़कर मिला न जलनिधि अंक, आह! वैसा ही हूँ, पाखंड।<sup>11</sup>

मुक्तिबोध को यहां मनु अहंवादी व्यक्ति लगते हैं। पश्चातापी और द्रंद ग्रस्त व्यक्ति नहीं। वे लिखते हैं- “वह अपनी आत्म स्वीकृति के अनुसार एक पाखंड भी है। वास्तविक पाखंड इसलिए है कि वह भावुकता के क्षणों में बह सकता है किंतु वह भावुकता मात्र आत्ममोहजन्य है। उसकी भावुकता, उसके हृदय का गीलापन, एक भयानक आत्मकेंद्रित व्यक्तिगत वासना-बद्धता तथा अहंकार से उत्पन्न है। इस आत्ममोह के पीछे उसका भयानक अहं काम कर रहा है”<sup>12</sup> पर मनु यहां अहंवादी से ज्यादा पश्चाताप-ग्रस्त दिखता है। अहंवादी व्यक्ति कभी भी अपने को दोष नहीं दे सकता। वह भावना की सरिता में बह नहीं सकता। वह अपने को सबसे श्रेष्ठ और अपने हर कर्म को निर्दोष मानता है। अपने किए पर वह पश्चाताप नहीं करता। मनु

की चेतना दो कारणों से विकसित है- पहला तो यह है कि उसे अपनी गलती का एहसास हो चुका है। दूसरा यह है कि कोई साथी के बिना उसे अपना जीवन निरर्थक लगता है। वह जानता है कि उसका जीवन विश्व-मंगल की भावना से युक्त नहीं है क्योंकि उसका जीवन हमेशा स्वार्थमय रहा है। वह हमेशा अपने जीवन की पहली में व्यस्त रहा है-

पहेली-सा जीवन है व्यस्त, उसे सुलझाने का अभिमान।<sup>13</sup>

मनु की इस विकसित विषाद और जड़ता की जीवन-राशि में चेतनता का संदेश लेकर उसकी शक्ति-रूपी श्रद्धा आती है। वह फिर से मनु के मन में जीने की ललक पैदा करती है। श्रद्धा का रूप-वैभव जड़ में भी स्पर्ती पैदा करने वाला है।

नित्य यौवन छवि से दीप्त विश्व की करुण कामना मूर्ती  
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती जो जड़ में स्फूर्ति।<sup>14</sup>

कामायनी काम से झिझकने वाले मनु को काम का उपदेश देती है, क्योंकि काम ही सृष्टि का मूल है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में “काम भोग का स्तवन है, वह घृणास्पद नहीं”।<sup>15</sup> प्रसाद इस दर्शन से प्रभावित होने के कारण उन्होंने श्रद्धा के द्वारा यह उपदेश दिलाया है।

काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम,  
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम।<sup>16</sup>

फिर श्रद्धा संसार के दुख-सुख के रहस्य को समझाते हुए कहती है-

दुख की पिछली रजनी बीच विकसित सुख का नवल प्रभात  
एक पर्दा यह झीन नील छुपाए हैं जिसमें सुख गात  
जिसे तुम समझते हो अभिशाप जगत की ज्वालाओं का मूल  
इसका वह रहस्य वरदान कभी मत इसको जाओ भूल।<sup>17</sup>

दुख और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां दुख है, वहां सुख है। जहां अंधेरा है, वहां आलोक है। जहां फूल हैं, वहां कांटे हैं। दुख से ही सुख का उदय होता है और रात जितनी अंधेरी होगी, सुबह उतन उजाला लेकर आएगा। यही परिवर्तन संसार का नियम है। उसको न समझ कर संसार से पलायन करना नियति के विरुद्ध है। काम त्याज्य नहीं है वह तो ईश्वर का वरदान है। इसीसे सृष्टि का उन्मीलन होता है। अतः पिछली निराशा दुख को छोड़कर काम, मिलन, साम्य-रस को अपनाना चाहिए। श्रद्धा कर्म और भोग का संदेश देती है।

एक तुम यह विस्तृत भूखंड प्रकृति वैभव से भरा अमन्द  
कर्म का भोग, भोग का कर्म यही जड़ का चेतन आनंद।<sup>18</sup>

### जिजीविषा से वासना की ओर

मनु की चेतना में आशा सर्ग में उठी जीवन-लालसा की आग जब बुझती जा रही थी तब श्रद्धा आकर अपने उपदेश द्वारा उसको पुनःज्वलित करती है। उसकी जिजीविषा धधक उठती है। उसे श्रद्धा से सृष्टि के उन्मीलन का पता चलता है। श्रद्धा, शैव-दर्शन के अनुसार जो शक्ति रूपी, काम रूपी है; मनु को काम का रहस्य बताती है। प्रेम-चेतना ही भूमा का वरदान है और रति रूपी शक्ति की लीला यह जगत है। इसी रति से जगत का सृजन होता है। प्रसाद ने लिखा है-

यह लीला जिसकी विकास चली, वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।<sup>19</sup>

उसी में जड़ चेतना का रहस्य छिपा हुआ है और यही शीतलमय और शांतिमय है।

जड़ चेतना की गांठ वही सुलझन है भूल सुधारों की  
वह शीतलता है शांतिमयी जीवन के उष्ण विचारों की।<sup>20</sup>

“अब मनु की चेतना का स्वरूप जीवन भोग के लिए लालायित उस व्यक्ति का सा हो जाना चाहिए जो मनसः पूर्णतः स्वस्थ व प्रसन्न हो, आस्था और विश्वास से भरा हो”।<sup>21</sup> पर मनु की चेतना में इस प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। उसकी चेतना का विस्तार इसलिए नहीं हो सका कि उसने काम को बहुत सीमित अर्थ में देखा। यह उसकी पाश-बद्धता का परिणाम है। मनु उस काम तक पहुंचना तो चाहते हैं-

मनु आंख खोल पूछ रहे पथ कौन वहां, पहुंचाता है।  
उस ज्योतिर्मयी को देव, कहां कैसे कोई नर पाता है।<sup>22</sup>

पर उनको यह काम सिर्फ शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श में दिखाई देता है। उससे वे आगे नहीं बढ़ पाते। वे तामस अहंकार से जात पाँच तन्मात्राओं में फंसे रह जाते हैं।

पीता हूँ, हां! मैं पीता हूँ यह स्पर्श रूप रस गंध भरा  
मधु लहरों के टकराने से ध्वनि में है क्या गुंजार भरा।<sup>23</sup>

मनु इस तन्मात्राओं से युक्त होकर वासना की ओर बढ़ते हैं। उन्हें श्रद्धा की याद आती है। वह उसको अपनी कामवासना की उलझन को सुलझाने वाली, वासना के तप्त मरुस्थल पर बहने वाली, सलील की धारा के रूप में देखता है, उसकी चेतना में श्रद्धा सिर्फ एक वासना की पुतली बनकर रहती है। उसकी वाणी और उसका रूप-सौंदर्य मनु की वासना को और भी उद्दीप्त कर देता है। श्रद्धा की आत्मसमर्पण की वाणी, लज्जा का सौंदर्य-आकर्षण और उसके स्पर्श के सुख को याद कर वह वासना में उन्मत्त होकर तड़प उठता है।

खोलो खोलो छवि देखूंगा जीवन धन की।<sup>24</sup>

वासना में डुबे व्यक्ति शरीर की रूप-छवि को क्यों न देख ले, शरीर से संबंध स्थापित क्यों न कर ले, आत्मा की छवि को नहीं देख पाता, आत्मा के साथ नहीं मिल पाता। प्रसाद जी ने सही कहा है-

आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की।<sup>25</sup>

मनु काम सर्ग के अंत तक सिर्फ वासना का एक उल्का पिंड के रूप में जलता रहता है। उसका चित वासना की प्यास में बेचैन है। वह अब तक श्रद्धा के शरीर को नहीं पा सका है। श्रद्धा अभी अतिथि बनी हुई है।

प्यासा हूँ मैं अभी प्यासा संतुष्ट ओघ से मैं न हुआ।<sup>26</sup>

### वासना, मोह और आसक्ति

काम सृष्टि का मूल बीज है और वासना उसकी क्रिया। वासना काम की क्रिया-शक्ति होते हुए भी एक नकारात्मक भाव को लेकर आती है। कारण यह है कि यह मोह, तृष्णा के अर्थ में आती है। यहाँ अहं की पराकाष्ठा भी दिखाई देती है। इस अहं या मैं भाव से वासना का प्रकटीकरण होता है। महोपोनिषद में कहा गया है-

ममो पुत्रो मम धनमहं सोअयमिन्द्रममः  
इतियामिन्द्र जालेन वासनेव विवलगति।<sup>27</sup>

अर्थात् मेरा पुत्र, मेरा धन, यह मैं हूँ, यह मेरा है, इत्यादि इंद्रजाल से वासना प्रकट होती है। यही मेरा की भावना, अधिकार की भावना, वासना का मूल है। मनु इससे ग्रस्त होकर कहता है-

विश्व में जो सरल सुंदर हो विभूति महान  
सभी मेरी है, सभी करती रहे प्रतिदान।<sup>28</sup>

यही अधिकार भावना के साथ मोह का जन्म होता है। मानव संसार में कोई भी सुंदर चीज देखता है, उसे अपना बनाना चाहता है। उस पर अपना अधिकार जाहिर करना चाहता है। दूसरों की उस चीज पर लोलुप दृष्टि का अनुभव करते ही उस पर क्रोधान्वित होता है। यह मोह और आसक्ति चेतना के विकास को बंधन में डाल देती हैं। तब उसका किसी से भी कोई संबंध पशुस्तर का ही रह जाता है। यहां काम के नकारात्मक रूप को हम देखते हैं।

छुटती चिनगारियां, उत्तेजना उद्भ्रांत  
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत  
वात-चक्र समान कुछ था बांधता आवेश  
धैर्य का कुछ भी न, मनु के हृदय में था लेश।<sup>29</sup>

जो काम विश्व-रचना के मूल में है, एक सकारात्मक भाव है वही यहां नकारात्मक बनकर धधकती ज्वाला की विनाशात्मक लपटें उत्पन्न कर रहा है। मनु को अशांत और धैर्यहीन बना रहा है। उस वासना में देने की भावना नहीं सिर्फ पाने की भावना है। जब तक बिना प्रतिदान के देने की भावना नहीं, आत्मसमर्पण नहीं, भक्ति की भावना नहीं, तब तक वहां प्रेम नहीं अहं की भावना है, प्रभुत्व की भावना है। यही कारण है कि मनु और श्रद्धा का मिलन नहीं हो पा रहा था, यद्यपि दोनों दिन व दिन परिचित होते जा रहे थे।

नित्य परिचित हो रहे तब भी रहा कुछ शेष  
गूढ़ अंतर का छिपा रहता रहस्य विशेष।<sup>30</sup>

यह जो कुछ ‘शेष रह गया’ और कुछ नहीं मनु की अहं की भावना है। इसी अहं और प्रभुत्व की भावना के कारण मनु श्रद्धा पर एकाधिपत्य स्थापित करना चाहता है। पशुओं के प्रति श्रद्धा के स्नेह को भी वह सहन नहीं कर पाता। वह उससे जल उठता है।

आह यह पशु और इतना सरल सुंदर स्नेह  
पल रही मेरे दिए जो अन्न से उस गेह  
मैं? कहां मैं? ले लिया करते निज भाग  
और देते फेंक मेरा प्राण्य तुच्छ विराग।<sup>31</sup>

मनु श्रद्धा के पशुओं के प्रति स्नेह को अपने प्रति विराग समझता है। वासना में जलता मनु श्रद्धा का विराग देख कर उस पर बरस पड़ता है।

कहां, क्यों तुम अभी बैठे ही रहे धरे ध्यान  
देखती है आंख कुछ सुनते रहे कुछ कान  
मन कहीं यह क्या हुआ है? आज कैसा रंग।<sup>32</sup>

जब जब जीवात्मा मनु सही रास्ता भूलने लगते हैं, तब-तब उसकी शक्तिरूपी श्रद्धा उसे सही रास्ते पर लाने की कोशिश करती है। वह अपने स्पर्श से, अपने रूप से, मनु की ईर्ष्या को शांत कराती है। मनु की ईर्ष्या तो शांत होती है पर उसका भटकाव समाप्त नहीं होता। उसकी चेतना आत्म सुख चाहती है, वह फिर वासना में उत्तेजित होकर यह चाहता है कि श्रद्धा उसका आलिंगन करें।

पशु की हो पाषाण सब में नृत्य का नव छंद  
एक आलिंगन बुलाता है सभी को सानंद।<sup>33</sup>

पर वासना सर्ग के अंत तक ऐसा लगता है कि मनु की चेतना पूर्णतः स्वस्थ हो गई है। मनु ने जिस रूप में श्रद्धा के पास समर्पित किया वह रूप, स्वस्थता का परिचायक है-

ले लो चेतना का समर्पण दान  
विश्व रानी, सुंदर नारी, जगती का मान।<sup>34</sup>

यहाँ मनु अपने अहंभावना से मुक्त नजर आता है। हमेशा हेय मानने वाला नारी को विश्व-रानी, जगती का मान कहता है। मनु की चेतना का यह सकारात्मक रूप कर्म सर्ग तक आते-आते खत्म हो जाता है। वह फिर भोग लालसा में सराबोर हो उठता है। उसकी चेतना में देवता-सभ्यता का भोग विलास फिर से जाग उठता है।

ललक रही थी ललित लालसा सोमपान की प्यासी।<sup>35</sup>

जीवन में विलासिता, मादकता आदि सुविधाएं हो सकती हैं पर आनंद दायक नहीं। आनंद भोगने में नहीं, आनंद लेने में नहीं, आनंद देने में है। मनु केवल लेना जानता है, अधिकार जताना जानता है, समर्पण नहीं। उसका अहंकार बढ़ता जाता है और वह हिंसालु और तामसी हो उठता है। उसकी हिंसालु प्रवृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह निरीह पशु को मार खाने की बात करता है। उसकी आंखों में आमिष-लोलुप रस भर जाता है।

क्यों किलात ! खाते खाते तृण और कहां तक जीऊं  
क्या कोई उपाय ही नहीं कि उसको खाऊं।  
बहुत दिनों में एक बार तो सुख की बीन बजाऊं।<sup>36</sup>

मनु की चेतना का स्वलन इस हद तक हो जाता है कि वह संसार के प्रति अपने को समर्पित न कर, संसार को भोग्य समझता है और चारों ओर उसे वासना ही वासना दिखाई देती है। मनु में भोग की मादकता की पराकाष्ठा इस अर्थ में नजर आती है कि उसे दो बूंद में जीवन का रस बहता दिखता है। मनु की चेतना के इस प्रकार के स्वलन को देखकर श्रद्धा फिर उसे समझाती है। वह इस धरती पर रहने वाले हर प्राणियों को महत्व देती है। अतः वह मनु से पूछती है

यह प्राणी जो बचे हुए हैं इस अचला जगती के  
उनका कुछ अधिकार नहीं क्या ये सभी हैं फीके।<sup>37</sup>

पर मनु का पतन इतना हो चुका है कि वह श्रद्धा के उपदेश से अपने को परिवर्तित नहीं कर पाता वह अपने जीवन के सुख को सब कुछ मानता है।

तुच्छ नहीं है अपना सुख भी श्रद्धे! वह भी कुछ है  
दो दिन के जीवन का तो वही चरम सब कुछ है।<sup>38</sup>

यहां मनु एक अस्तित्ववादी व्यक्ति लगता है, जो जीवन को क्षणस्थायी मान कर एक ही क्षण में सारा का सारा सुख बटोरने लग जाता है। संसार को क्षणभंगुर मानने वाला व्यक्ति दूसरों के प्रति नहीं बह सकता, दूसरों को नहीं समझ सकता। वह आत्मकेंद्रित हो जाता है। संसार का सारा सुख वह खुद निचोड़ लेना चाहता है। इसके लिए वह किसी को कोई कष्ट दे सकता है, परेशान कर सकता है। यह प्रवृत्ति हम मनु के चरित्र में पाते हैं। अहं से भरा हुआ अपने सुख में मशगूल व्यक्ति अपना अंत का कारण बनता है। उसमें तामसी वृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह जीते हुए भी मरता जाता है। एक यांत्रिक जिंदगी जीने के सिवाय वह कुछ भी नहीं कर पाता।

जीवन व्यष्टि में नहीं समष्टि में है। “व्यक्ति का विकास समष्टि से जुड़ा है। अकेले अपना पेट भरने वाला पापी है। भारतीय संस्कृति व्यक्तिवाद पर नहीं समष्टिवाद पर आधारित है। व्यक्ति अपना अध्यात्मिक उत्थान कर संसृति सेवा करें वही उसकी सिद्धि है”।<sup>39</sup> श्रद्धा संसृति की सेवा को मानव का भाग्य मानती है –

रचना मूलक सृष्टि यज्ञ-पुरुष का जो है  
संसृति सेवा भाग्य हमारा उसे विकसने की है।<sup>40</sup>

संसृति की सेवा कर दूसरों के सुख को अपना सुख मानना ही सही मानवता है। यह जीवन का उद्देश्य है; संसार का उद्देश्य है। जीवात्मा मनु प्रत्यभिज्ञा दर्शनानुसार आणव, मायीय और कर्म मल से युक्त हो जाने के कारण, श्रद्धा के वचन का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। वह भोग लालसा में उत्तेजित होकर श्रद्धा को भी सुरा पान करा देता है और मनु फिर अपनी वासना की तृप्ति श्रद्धा के साथ करता है। मनु श्रद्धा को पाने के लिए उसे सोमरस पिलाता तो है, साथ-साथ छल से भी काम लेता है। उसके इस हाल का पता हमें इष्या सर्ग में प्राप्त होता है। वहां उसका अहं अपनी उर्द्धता को छू लेता है। वह हिंसा भाव से भर जाता है। हर दिन शिकार करने लगता है। फिर भी उसका मन शांत नहीं होता। वह और भी बहुत कुछ पा लेना चाहता है। उसका मन सब कुछ पा लेने की लालसा में भरा था।

हिंसा ही नहीं और भी कुछ खोज रहा था मन अधीर  
अपनी प्रभुत्व की सुख सीमा जो बढ़ती है, अवसाद चीर।<sup>41</sup>

मनु अपनी संतान से इसलिए इष्या करता है कि उसको डर है कहीं उसका अधिकार छिन न जाए। उसको डर है संतान जन्म के बाद श्रद्धा उसे भूल जाएगी। अतः श्रद्धा का अपने भावी बच्चे के प्रति प्रेम पूर्ण वचन सुनकर वह विक्षिप्त सा हो उठता है।

तुम फूल उठोगी लतिका-सी कंपित कर सुख सौरभ तरंग  
मैं सुरभि खोजता भटकूंगा वन-वन बन कस्तूरी कुंरंग।<sup>42</sup>

मनु प्रेम करना नहीं जानता। वह वासना को ही प्रेम समझता है। वासना में जहां सब कुछ पा लेने की चाहत रहती है वहां प्रेम में सब कुछ समर्पण की इच्छा। प्रेम बांटने में है, छुपाने में नहीं। श्रद्धा ही एक ऐसा चरित्र है जो प्रेम बांटना जानती है। वह सभी से प्रेम करती है। उसका हृदय हर एक की ओर बहता है। पर यह मनु नहीं चाहता। वह नहीं चाहता कि श्रद्धा अपने प्रेम की वर्षा उसके सिवाय और किसी पर करें। अतः वह अपनी संतान के प्रति श्रद्धा के प्रेम को देख कर उसे गर्भवती अवस्था में छोड़ कर चला जाता है।

### वासना से प्रेम की ओर

जीवन का सुख आनंद, प्रेम में है, वासना में नहीं। वासना में जहां तम के परमाणु व्यस्त होकर दौड़ते हैं, वहां प्रेम में प्रकाश जगमगाता है। वासना में जहां असत्य, अंधकार दौड़ता है, वहां प्रेम में सत प्रकाश आनंद है। उसे पाकर मानव सिद्ध, अमृत और तृप्त हो जाता है। प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही आलोक है, प्रेम ही मंगल है, प्रेम ही विश्वरूप है। इसमें ही आणव मल का निवारण होता है। जीवात्मा को प्रत्यभिज्ञा होता है। प्रत्यभिज्ञा का मतलब अपने सही रूप को पहचानना है; ‘स्व’ से एक होना है। यह कार्य प्रेम द्वारा ही संभव है। ‘इडा’ सर्ग में मनु वासना से प्रेम की ओर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यद्यपि बीच में हम उसका पतन भी देखते हैं। श्रद्धा परित्याग के बाद मनु चारों ओर दुख ही दुख पाता है। मनु की दशा का चित्रण प्रसाद जी ने इस प्रकार किया है-

किसी गहन गुफा से अति अधीर  
झंझा प्रवाह-सा निकला यह  
जीवन विशुद्ध महासमीर।<sup>43</sup>

वह पश्चाताप की आग में जलता है, वह पहले भी पश्चाताप की आग में जला था। पर दोनों में अंतर है कि पहला पश्चाताप श्रद्धा के सानिध्य के पहले का पश्चाताप है जो उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं ला सका। अबका पश्चाताप श्रद्धा के सानिध्य के बाद का पश्चाताप है जो उसकी चेतना में रंग भर देता है। उसकी चेतना का सही विकास होता है। उसे श्रद्धा को छोड़ने का पश्चाताप होता है। अपना एकमात्र सहारा को खोकर वह दुखी होता है। उसको जल-प्रलय के बाद का द्वंद्व फिर पेशान करता है। पर अब उसके पास उसको समझाने वाली श्रद्धा नहीं है, मनु अपने पूर्ववर्ती कर्म को बार बार सोचता है। उसके भीतर कोई हमेशा बोल बोल कर उसकी अपनी गलती का एहसास करा रहा है। उसके दुख का कारण यह है कि उसने विश्व को असत समझ लिया है। और जीवन को क्षणस्थायी मान कर सारा सुख पाने के लिए उतावला रहा और वासना को ही स्वर्ग मान बैठा।

दो क्षण बीते सुख साधन में उसको ही वास्तव लिया मान  
वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी यह उल्टी मति का व्यर्थ ज्ञान।<sup>44</sup>

मनु ने श्रद्धा को छोड़कर हृदय पक्ष का बलिदान कर दिया। उसने बुद्धि पक्ष को बल दिया और हमेशा दुख पाता रहा। कारण यह है कि हृदय बहता है वह सबसे नाता जोड़ना चाहता है और बुद्धि आदमी को बांध लेती है। बिना लाभ के वह किसी से संबंध नहीं रखना चाहती। जब तक दोनों का मेल नहीं है तब तक आदमी हमेशा विषाद ग्रस्त रहता है।

मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध, दोनों में हो सद्भाव नहीं  
वह चलने को जब कहे कहीं, तब हृदय विकल चले जाए कहीं।<sup>45</sup>

आज के भौतिकवादी, वैज्ञानिक युग में मानव में बुद्धि को ही बल दिया है। यही कारण है कि आज सारे संसार को एक भयानक खूंखार माहौल ने घेर रखा है। आज चारों ओर स्वार्थ-साधन, चोरी, डकैती, बलात्कार आदि कुप्रवृत्तियां मनुष्य में जाग गई हैं जो सारे संसार को व्यस्त बना रही हैं। 'इडा' सर्ग में प्रसाद जी ने इस बुद्धिवाद पर खड़ा वैज्ञानिक युग का चित्रण किया है।

काम मनु को उसके अंदर चल रहे द्वंद्व का कारण बताते हुए कहता है "तुम अपने स्वरूप को भूल गए हो। तुम पांच कंचुकों से युक्त होने के कारण अपने वास्तव-रूप को खुद आवृत कर दिया है और हिंसा, अहं से काम लिया है। जो श्रद्धा तुम्हारे प्रति हमेशा सहृदय रही, उसको छलकर खुद द्वैतता का शिकार बने, अद्वैत नहीं बन सके। यही तुम्हारा बाह्य और अंतर्द्वंद्व का कारण बना"। अब मनु को अपनी गलती का एहसास हो चुका है। अपने स्वरूप को न पहचान पाने के कारण वह जान चुका है। वह अभी इससे मुक्त होना चाहते हैं। मनु चाहते हुए भी नियति जाल से मुक्त नहीं हो पाता क्योंकि सारा प्रपंच ही अशुद्ध है। एक ओर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार सृष्टि पांच तत्व से युक्त होकर अशुद्ध है तो दूसरी ओर बुद्धिवाद से घिरा यह प्रेमहीन यांत्रिक संसार। इस काजल कोठरी से बेदाग कोई कैसे निकल सकता है, जब तक कोई उसे रास्ता न दिखाए। आज उसे सही रास्ता दिखाने वाली श्रद्धा उसके पास नहीं है, फिर वह रास्ते से भटक जाता है। उसकी चेतना में फिर से वासना का सागर जग उठता है और वह अपनी पुत्री को भी अपनी वासना का शिकार बनाता है।

मैं अतृप्त आलोक भिखारी, ओ प्रकाश बालिके बता

कब डुबेगी प्यास हमारी इन मधु अधरों के रस से।<sup>46</sup>

मनु की अहंकार इतना बढ़ जाता है कि वह प्रजाओं के साथ संघर्ष करता है; उस पर अत्याचार करता है और उनका कोप भाजन बनता है।

सिंह द्वारा अरराया, जनता भीतर आई  
मेरी रानी उसने दो चित्कार मचाई।<sup>47</sup>

प्रजा के साथ मनु का भयंकर युद्ध होता है और मनु का साथ देने वाला कोई नहीं है और मनु की पराजय होती है। अंत में उसे महाशक्ति का विरोध सहना पड़ता है और वह आहत हो कर गिरता है।

सभी शस्त्रों की धारें भीषण वेग से भर उठी  
और गिरी मनु पर और मुर्मुष वे गिरे वहीं पर  
रक्त नदी-सी बाढ़ फैलती थी उस भू पर।<sup>48</sup>

मनु के आहत होने पर उसकी शक्ति रुपी श्रद्धा फिर से उसके पास आ पहुंचती है। शक्ति कभी शिव से अलग नहीं रह पाती। पर शिव-मनु जब पाँच कंचुकों से घिर जाता है, तब शुद्ध शक्ति अशुद्ध मनु के साथ नहीं रह सकती थी। अतः दोनों में भेद उत्पन्न हो गया था। पर जीव मनु अहंकार से ग्रस्त होकर जब जब कुछ अनहोनी कर बैठता है, तब तब उसकी शक्ति उसके पास आकर उसे समझाने लगती है।

रूठ गया था अपनेपन से, अपना सकी ना उसको मैं।  
वह तो मेरा अपना ही था भला मनाती किसको मैं।<sup>49</sup>

मनु श्रद्धा को गर्भावस्था में अकेली छोड़ आए। फिर भी श्रद्धा मनु को अपना मानती है। श्रद्धा हृदय का प्रतीक है और वह किसी पर भी रष्ट नहीं होता। वह सिर्फ प्यार कर सकता है, घृणा नहीं, क्रोध नहीं। दोबारा श्रद्धा को पाकर मनु सजीव हो उठता है। उसकी चेतना में स्वस्थता के लक्षण दिखाई देते हैं। वह संसार में भरे घृणा भाव को पहचानने लगता है। मनु को अपनी शक्ति का एहसास हो चुका है। अतः वह श्रद्धा को फिर से खोना नहीं चाहता।

आंख बंद कर लिया क्षोभ से, दूर दूर ले चल मुझको  
इस भयावने अंधकार में, खो दूँ कहीं न फिर तुझको।<sup>50</sup>

उसको अब यह स्वीकार करने में कोई परेशानी नहीं होती है कि श्रद्धा के साथ वह प्रकाश की ओर बढ़ सकता है, अपने शिवत्व को प्राप्त कर सकता है।

### प्रेम में अहम का लोप और अतिचेतन

मैं भाव का अंत दूसरे का महत्व स्वीकार करने में है। उसके पास अपने को समर्पण कर देने में है। इसमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष उसका कोई भेद नहीं रहता है। श्रद्धा पर हमेशा अधिकार जताने वाला, उस पर ईर्ष्या करने वाला मनु श्रद्धा को मंगलमय और अपनी पथ प्रदर्शक मानता है। इसके साथ उसमें अहम का लेश मात्र भी नहीं रह जाता। उसका प्रेम भक्ति की पावनता को छू लेता है; उसकी चेतना का उर्ध्व विकास होने लगता है। उसको श्रद्धा का एक-एक उपदेश याद आता है। वह उसे स्वीकार भी करता है।

तुमने हंस-हंस मुझे सिखलाया विश्व खेल है खेल चलो  
तुम ने मिलकर मुझे बताया सबसे करते मेल चलो।<sup>51</sup>

अहं व्यक्ति को बांधता है, अपने में सीमित कर देता है, जो उस का पतन का कारण बनता है। अहं का लोप होते ही आदमी का बांध टूट जाता है। वह

बहता है, उसका हृदय बहता है। संसार के कण-कण को प्यार करता है, सबसे वह संबंध जोड़ता है। यह संबंध प्रेम का ही होता है। इस प्रेम में देना ही रहता है, लेना नहीं।

मनु को इस बात का पता चल चुका है कि अपने अहं के कारण ही वह संसार के कण-कण के प्रति बह न सका जो उसके शिव रूप का उद्देश्य था। अतः वह पश्चाताप के आग में जलता है। वह पश्चाताप तो करता है पर संसार के उद्देश्य को अब तक पहचान नहीं पाता। उसको संसार भय, घृणा से भरा इंद्रजाल लगता है।

सोच रहे थे जीवन सुख है ना यह विकट पहेली है  
भाग अरे मनु इंद्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है।<sup>52</sup>

मनु को यह पता नहीं है कि इस संसार के कण-कण में आनंदमय ब्रह्म का निवास है। पर मनुष्य अपने भेद-बुद्धि के कारण हमेशा संसार को निरानंद मानता है। वह संसार को इसलिए इंद्रजाल मानता है कि उसकी चेतना ही इंद्रजाल से घिरी है। मनु पश्चाताप के आग में जलता हुआ पलायन करता है। श्रद्धा मंगलमय है, विश्व कल्याणी है, महाशक्ति है। वह संसार में भेद बुद्धि का शिकार होकर भटकने वाली जीवात्मा की पथ प्रदर्शक है। वह सिर्फ मनु को ही नहीं, बुद्धि की पुतली इड़ा को भी उपदेश देती है। वह इड़ा के चरित्र का खुलासा इन पंक्तियों में करती है-

सिर चढ़ी रही! पाई न हृदय, तू विकल कर रही है अभिनय  
अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आलोक हृदय।<sup>53</sup>

इड़ा हमेशा नफरत करने वाली बुद्धि से पगी रही, प्यार बांटने वाले हृदय से नहीं। वह चेतना के सही स्वरूप को पहचान न सकी इसके कारण वह खुद सुख में विचरती रही संसार को विषाद देती रही। श्रद्धा चित्ति के सही स्वरूप का ज्ञान इड़ा को कराती है।

चित्ति का स्वरूप यह नित्य जगत, वह रूप बदलता है सत-सत  
कण विरह, मिलनमय नृत्य निरत, उल्लासपूर्ण आनंद सतत।<sup>54</sup>

श्रद्धा के उपदेश से इड़ा भी अपनी आणव स्थिति से बाहर आ जाती है। वह श्रद्धा के उपदेश को, अपने सारे संताप को मिटाने वाला मानती है और उसकी चरण धूली भी लेती है अर्थात् अपने को श्रद्धा के प्रति समर्पित कर देती है। और उसके अहंकार का लोप भी हो जाता है।

हे! देवी तुम्हारा स्नेह प्रबल, बन दिव्य श्रेय उद्गम अविरल  
आकर्षण घन-सा वितरे जल, निर्वासित संताप सकल।  
कहा इड़ा ले चरण धूल, पकड़ा कुमार कर मृदुल फूल।<sup>55</sup>

मनु के शिव रूप को घेरे तीन मलों में से मायिक और कार्मिक तो छूट चुके हैं। पर उसमें अब आणव मल विद्यमान है। जिसके कारण वह पलायन करता है। उसकी शक्ति रूपी श्रद्धा उसको इस मल से मुक्त करने के लिए फिर उसके पास जा पहुँचती है। श्रद्धा का सानिध्य फिर से पाकर मनु का आणव मल फिर छूटता जाता है। अपनी शक्ति को सही सही पहचानने लगता है। पहले श्रद्धा को एक दुर्बल नारी कह कर उस पर अधिकार जताने वाला मनु, उसे देवी और मातृ-मूर्ति कहकर संबोधित करता है। मनु को अपने स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान होने लगता है। वह अपनी सत्ता को पहचानने लगता है। उसको पता चल चुका है कि उसने भव चक्र में पड़कर भेद को स्वीकार किया है और अपने सही रूप को खो कर शून्यता का वरण किया है। यहां आकर मनु की चेतना प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार सांभव स्थिति में और उपनिषद अनुसार तुरीय अवस्था में पहुंच जाती है। यहां वह भेद से

अभेद की ओर, जीवत्व से शिवत्व की ओर बढ़ता है। अब उसकी चेतना मोह, माया, वासना, अहं आदि सारी क्लृप्तता से मुक्त हो जाती है और वह ध्यान मग्न हो कर उस परमशिव के स्वभाव को पहचानता है।

वह रजत गौर उज्ज्वल जीवन आलोक पुरुष मंगल चेतन  
प्रकाश का था कल्लोल, मधु किरणों की थी लहर लोल।<sup>56</sup>

मनु इसके साथ-साथ उस परम शिव, महचित्ति का साक्षात्कार भी करता है और वह उस अखंड आनंदमयी महाशक्ति के साथ मिल जाने के लिए उत्सुक को उठता है।

देखा मनु ने नर्तित नटेश, हतचेत पुकार उठा विशेष  
यह क्या श्रद्धे! बस तू चल उन चरणों तक दे निज संबल  
सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल, पावन बन जाते हैं निर्मल।  
मिटते असत्य से ज्ञान लेश। समरस, अखंड आनंद-वेष।<sup>57</sup>

मनु को समरसता, अखण्ड आनंद का ज्ञान तो हो चुका है, पर अभी उसको उसका बोध दूर है। बोध आत्म प्रतिभिज्ञान से ही हो सकता है। अतः श्रद्धा मनु को आत्म प्रतिभिज्ञान की ओर ले जाती है और मनु उत्सुकता के साथ बढ़ता है।

श्रद्धा आगे मनु पीछे थे, साहसी उत्साही सा बढ़ते।<sup>58</sup>

### महाचित्ति की लीला का तात्पर्य

“प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव की पांच शक्ति की बात की गई है- चित, आनंद, इच्छा, ज्ञान क्रिया। चित शक्ति शिव की प्रथम शक्ति है। यह विश्व सृजन करती है। इसे महाचित्ति और अनुत्तर भी कहा जाता है। अनुत्तर इसलिए कहा गया है कि इसके ऊपर कोई नहीं है। यह प्रकाशरूपा है। प्रकाशरूपा चितशक्ति”।<sup>59</sup> यह चित का सबसे उच्चतम रूप है। मानव में इस चित्ति की लीला ही शिव सत्य की लीला है। इस अवस्था में इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनों मिल जाते हैं। इच्छा शक्ति शिव के सृष्टि उन्मीलन के मूल में है। यह इच्छा किसी अभाव के कारण उत्पन्न नहीं होती। यह तो शुद्ध इच्छा मात्र है। पर पांच तन्मात्राओं के साथ जुड़ जाने के कारण यह अशुद्ध हो जाती है। क्रिया शक्ति को विश्वकारिता की योग्यता बतलाया गया है। इसके कारण ही विश्व का उन्मीलन होता है। किसी कर्तव्य या कर्म से इसका कोई संबंध नहीं है। इसमें अहम तत्व पांच कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और नियति से जुड़ जाने के कारण कर्म लोक में सदा संघर्ष चलता रहता है। ज्ञान शक्ति वस्तु के निश्चित एवं यथार्थ रूप का बोध कराने वाली शक्ति है। यह ज्ञान शक्ति शिव को अपने स्वरूप का ज्ञान कराती है। इसलिए तंत्र सार में इसे आमर्शात्मक ज्ञान शक्ति कहा गया है।

इन तीन शक्तियों को पहचानने वाला और इन तीनों शक्ति के चारों ओर घेरे रहने वाले अशुद्ध तत्वों को बाहिष्कार करने वाली जीवात्मा में ही महाचित्ति लीला करती है और वह अखंडानंद का भागी बनता है। श्रद्धा मनु को इन तीन शक्ति और इसको घेरे रखने वाले अशुद्ध तत्वों का परिचय कराती है। गुरु रूपी श्रद्धा के साथ चलते चलते मनु आणव मल से मुक्त होता है और उसका आत्म विस्तार होता है। वह अब सबको अपनापन में बांधना चाहता है।

मेरे हां, वह सब मेरे थे जिनसे रूठ चला आया हूं  
वे नीचे छुटे सुदूर, पर भूल नहीं उसको पाया हूं।<sup>60</sup>

मनु अपनी विस्तारित आत्मा के साथ चलते चलते उस जगह पर पहुंचते हैं जहां उसकी चेतना का कायाकल्प हो जाता है। प्रसाद लिखते हैं – उदित

चेतनता नवीन-सी। नई चेतना के उदय के साथ ही मन को त्रिदिक विश्व और आलोक बिंदु दिखाई देता है। पर मनु उसे नहीं समझ पाता। श्रद्धा एक एक रहस्य का खुलासा मनु के सामने करती है।

इस त्रिकोण के मध्य बिंदु तुम शक्ति विपुल क्षमता वाले थे  
एक एक को स्थिर हो कर देखो, इच्छा ज्ञान क्रिया वाले थे।<sup>61</sup>

यह पहले देखा जा चुका है की इच्छा, ज्ञान, क्रिया शिवरूप जो आलोक बिंदुरूपा है, के शक्ति त्रय हैं। श्रद्धा इसका ज्ञान मनु को कराते हुए इन तीनों में विषमता उत्पन्न करने वाली पांच तन्मात्राओं का भी परिचय कराती है।

शब्द, रूप, रस, गंध की पारदर्शनी पुतलियां  
चारों ओर नृत्य करती वह रूपवती रंगीन तितलियां।<sup>62</sup>

श्रद्धा मनु को माया तत्व के बारे में बताती है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार मायिक मल के कारण परम शिव अपने सही रूप को आच्छादित कर देते हैं और पुरुष तत्व बनकर अलग हो जाते हैं। पुरुष हमेशा इस में फंसा रह जाता है। माया ही जीव को अपने जाल में फांसी है और जीवन अपने सही स्वरूप से बहुत दूर चला जाता है। पांच तन्मात्राओं और माया तत्व से जुड़ कर इच्छाशक्ति अशुद्ध हो जाती है। इच्छा लोक के ज्ञान प्राप्त होने के बाद मनु को कर्म लोक के बारे में जानने की जिज्ञासा होती है। वह पूछता है

सुंदर बहुत तुमने दिखलाया किंतु कौन वह श्याम देश है  
कामायनी बताओ उस में क्या रहस्य रहता विशेष है।<sup>63</sup>

कर्मलोक शिव की इच्छाशक्ति का कार्य रूप है। पर इस पर जब नियति का शासन चलता है तो यह कर्मलोक दूषित हो जाता है। तब यह होता है कि शिव पुरुष रूप में प्रकट होता है। इस पर नियति अधिकार जमाकर पुरुष में मोह वासना का सृजन कराती है।

नियति चलाती कर्म चक्र यह तृष्णाजनित ममत्व वासना।<sup>64</sup>

इसके कारण मनुष्य के भाव राज्य के सारे सुख दुख में परिणत हो जाते हैं और मनुष्य हिंसा, गर्व से से उन्मत्त हो उठता है। इसी अहंवादी, हिंसावादी जीव के कारण समाज विषमता से ग्रस्त रहता है और यहां सर्वदा संघर्ष चलता रहता है। कर्म लोक के परिचय कराने के बाद श्रद्धा मनु को ज्ञान लोक का परिचय कराती है। ज्ञान शक्ति परम शिव को अपने स्वरूप का ज्ञान कराती है। पर यह बुद्धि तत्व से जुड़े रहने के कारण भेद दृष्टि को ही विकसित करती है। इस बुद्धि के आठ धर्म बतलाए गए हैं- धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, राग-विराग, ऐश्वर्य आदि। अत्यधिक बुद्धि से काम लेने वाला व्यक्ति की प्यास कभी नहीं बुझती, उसको कभी तृप्ति नहीं मिलती।

यहां प्राप्य मिलता है केवल तृप्ति नहीं कर भेद बांटती  
बुद्धि विभूति सकल सिकता-सी प्यास लगी है, ओस चाटती।<sup>65</sup>

इन सब अशुद्ध तत्वों से घिरे रहने के कारण इच्छा, ज्ञान, क्रिया का समन्वय नहीं हो पाता, जिसके कारण पुरुष का चित संकुचित हो जाता है और वह माया मोह से ग्रस्त होकर भटकता हुआ हमेशा दुख को ही वरण करता है। उसकी इस विडंबना को श्रद्धा मनु के सामने प्रकट कराती है। इन सबका ज्ञान होते ही मनु की चेतना शुद्ध हो जाती है और साथ-साथ उसकी शक्ति रूपी श्रद्धा उसमें लय हो जाती है। उसकी चेतना उपनिषद के अनुसार सुषुप्ति, जागरण को पार करके तुरीय अवस्था में पहुंच जाती है। जहां मनु को अहं ब्रह्मास्मी का ज्ञान होता है। योग के अनुसार उसकी शक्ति सहस्र चक्र में प्रवेश कराती है। जहां उसे अपना दिव्यत्व प्राप्त होता है और इच्छा-

ज्ञान-क्रिया तीनों मिलकर एक हो जाते हैं। यहां आकर मनु को आत्म प्रत्यभिज्ञान होता है और उसे अपना शिवत्व प्राप्त होता है। वह अखंडानंद का अनुभव करने लगता है। मनु की चेतना में अभेदत्व का दर्शन होता है, जहां महचिति लीला करती है। कई आलोचक मनु को पलायनवादी बताते हैं। पर यह उनका भ्रम है। यदि प्रसाद मनु को पलायनवादी घोषित करना चाहते तो वह संसार को मिथ्या साबित कर देते। पर वे ऐसा नहीं करते। वे तो सृष्टि को चेतन सुंदर बताते हैं।

अपने दुख सुख से पुलकित यह मूर्त विश्व सचराचर  
चिति का विराट बपू मंगल यह सत्य सतत चिर सुंदर।<sup>66</sup>

प्रसाद सृष्टि को सत्य चेतन बताते हुए मनु को संसृति की सेवा कराते दिखाई देते हैं।

यह युगल यही अब बैठे संसृति की सेवा करते  
संतोष और सुख देकर सबकी दुख ज्वाला हरते।<sup>67</sup>

### निष्कर्ष

अंत में मनु को विराट सत्ता का साक्षात्कार विश्व के कण-कण में होता है। वह संसृति सेवा में लग जाता है। यदि दर्शन को छोड़ कर हम महचिति के बारे में विचार करें तो यह पता चलेगा कि महचिति की लीला और कुछ नहीं मनुष्य और मनुष्य में भेद का अंत ही है। जहां मनुष्य और मनुष्य में द्वयता का अंत हो जाता है, मोह, माया, अहं की भावना खत्म हो जाती है; वहां दुख विषाद सब खत्म हो जाते हैं। यह बुद्धि द्वारा संभव नहीं हृदय द्वारा संभव है। बुद्धि तर्क की ओर ले जाती है, बांधती है। हृदय बांधता नहीं, बहता है। तर्क विश्वास नहीं करता हृदय विश्वास करता है। यही विश्वास ही मानव को मानव से प्रेम, एकता के बंधन में बांधता है, जिसके कारण मानव एक दूसरे की सेवा बिना प्रतिदान के करता है और आनंद का भागी बनता है। मनु को इसका भान हो चुका है अतः वह संसृति सेवा का उपदेश देता हुआ कहता है-

सब की सेवा न पराई वह अपनी सुख संसृति में।<sup>68</sup>

और महचिति से युक्त मनु मानव में भेदभाव भुलाकर विश्व में आत्मविस्तार करने का उपदेश देता है -

सब भेदभाव भुलाकर दुख सुख को दृश्य बनाता  
मानव कहरे यह मैं हूँ, यह विश्व नीड़ बन जाता।<sup>69</sup>

### संदर्भ

1. विश्ववन्धु - वेद शास्त्र संग्रह, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ० 87-88
2. प्रसाद जयशंकर- कामायनी - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997 पृ० 11
3. प्रसाद जयशंकर- कामायनी - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997 पृ० 14
4. प्रसाद जयशंकर- कामायनी - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997 पृ० 10
5. मुक्तिबोध - कामायनी: एक पुनर्विचार - राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभ्र मार्ग नई दिल्ली; 1997 पृ० 31
6. प्रसाद जयशंकर- कामायनी - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997 पृ० 16
7. प्रसाद जयशंकर- कामायनी - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997





- पृ 119
57. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 120
58. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 121
59. अभिनवगुप्त- तंत्रसार - ओरिएंटल पब्लिशिंग एण्ड रिसर्च, श्री नगर -  
पृ 6
60. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 122
61. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 123
62. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 123
63. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 125
64. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 125
65. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 126
66. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 132
67. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 129
68. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 132
69. प्रसाद जयशंकर- कामायनी – विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2 1997  
पृ 132